समकालीन कविता की प्रकृति और सैद्धांतिकी

[विशेष संदर्भ- धूमिल, आलोकधन्वा, और भगवत रावत]

-विक्रम कुमार

शोध सार : हिंदी कविता की एक विस्तृत परंपरा रही है। यह यात्रा आदिकाल से आरंभ होकर समकालीन कविता तक पहुंच चुकी है। समकालीन कविता का फ़लक बहुत ही विस्तीर्ण है। मुख्य सवाल यह है कि आखिर समकालीन कविता का आरंभ कबसे माना जाए? समकालीन कविता ने समाज के सभी भाव-भूमि और संवेदनाओं को महत्वपूर्ण आधार बनाया है। समकालीन कविता मनुष्य को वृहत्तर संवेदनाओं से जोड़ता है। आज हमलोग जिस दौर में हैं वहाँ मनुष्य होने की प्रक्रिया लगातार क्षीण हो रही है। आज भूमंडलीकरण जब दुनिया की हरेक सुंदर वस्तु को कमोडिटी में तब्दील कर देने को आतुर है तब समकालीन कविता हमें एक जिम्मेदार नागरिक की ओर ले जाती है। ऐसे दौर में इस टूटती बिखरती दुनिया को समकालीन कविता ने मजबूती से रेखांकित किया है। दुनिया के सामने समकालीन कविता एक नवबोध और युगबोध का लोकवृत रचती है। समकालीन कविता की इस लोकवृत को धूमिल, आलोकधन्वा और भगवत रावत की कविताओं के माध्यम से समझने का प्रयास करेंगे। भूमंडलीकरण और वर्तमान की चुनौतियों को जिस तरह समकालीन कविता दर्ज करती है, वह बहुत ही सार्थक है। समकालीन कविता की चिंताएं विस्तृत और गहरी हैं जो इस काव्य को महत्वपूर्ण बनाती है।

बीज शब्द : समकालीन कविता, भूमंडलीकरण, अस्सी का दशक, नागरिक, लोकतंत्र, युगबोध, स्त्री, परंपरा, आपातकाल और साम्राज्यवाद।

मूल आलेख : समकालीन कविता एक व्यापक फ़लक को अपने-आप में समेटे हुए है। फिर सवाल यह उठता है कि आखिर समकालीन कविता की आरंभिक स्थिति कब से मानी जाए? या कब से इसे आखिरी माना जाए?समकालीन कविता पर बात करते हुए यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न रहा है, जिसपर बहुत सारे विद्वानों ने अपने-अपने मत रखे हैं। मुझे निजी तौर पर समकालीनता की जो परिभाषा है, उसमें डॉ मैनेजर पाण्डेय की यह बात ज्यादा सार्थक लगी। वे कहते हैं "केवल नया ही समकालीन नहीं होता, बल्कि जो सार्थक है वही समकालीन है, चाहे वह पुराना ही क्यों न हो।"[1] अर्थात् समकालीनता कोई काल विशेष वस्तु नहीं है। पुराना साहित्य भी उतना ही समकालीन है जितना कोई बिल्कुल अभी का, यह भी निश्चित है कि किसी भी विधा को एक विशेष तिथि से उसका आरंभ और अंतिम तिथि घोषित नहीं किया जा सकता है क्योंकि साहित्य की विधा परंपरा और निरंतरता का विस्तृत फ़लक के साथ विकसित होती है। समकालीन कविता के सीमा निर्धारण में किसी ने इसे साठोत्तरी कविता के बाद का माना, किसी ने इसे आपातकाल के बाद की कविता माना तो किसी ने इसे अस्सी

के दशक के बाद का विकसित माना। अस्सी के दशक के साथ अशोक वाजपेयी जी का वह उद्घोष भी ख़्याल आता है, जहां उन्होंने कहा था की "अस्सी का दौर कविता की वापसी का दौर है।"[2] अस्सी के दशक के बाद कविता की जो व्यापकता थी, वह वाकई कविता की वापसी का समय था। मुझे निजी तौर पर लगता है कि समकालीन कविता की समय सीमा को अगर दो भागों में बांट दिया जाए तो इसकी समय सीमा की जो समस्या है, उसका हल मिल सकता है। समकालीन कविता की विभाजन रेखा अस्सी के दशक को माना जाना चाहिए, जिसका एक हिस्सा अस्सी के दशक से पूर्व की कविता और दूसरे हिस्से में अस्सी के दशक के बाद की कविता को रखकर मूल्यांकन और विश्लेषण किया जा सकता है। अस्सी के दशक से पूर्व की स्थितियों को देखें तो देश को साम्राज्यवादी ताकतों से आज़ादी मिल चुकी थी, देश की उम्मीदें प्रधानमंत्री नेहरू के साथ जा लगती हैं, लेकिन कुछ समय बाद यह नेहरूवियन मोह टूटता है। चार सौ वर्षों के गुलाम देश की आकांक्षाओं और इच्छाओं की पूर्ति कुछ ही वर्षों में आसान भी नहीं थी। इस दौर में विकास की कई योजनाएं लायी गई,समाज की उन्नति के लिए गतिशीलता के साथ कई कदम भी उठाए गए, जिसमें पंचवर्षीय योजनाएँ, हरित क्रान्ति, गरीबी हटाओ और जनसंख्या नियंत्रण जैसी तमाम योजनाएँ जो विकास केंद्रित थी वह शुरू की गई, जिनमें कुछ असफ़ल हुई तथा कुछ सफल। इन असफलताओं और सफलताओं के बीच समाज की उम्मीदों का ताना-बाना बिगड़ रहा था ।राजनीतिक विद्रूपताएं, मूल्यों का विघटन, पीडाओं-कुंठाओं से ग्रसित समाज एक अवसाद की ओर ले जा रहा था। साहित्य की दुनिया में भी यह दौर उथल-पुथल का था,कई सभा और संगठन निर्मित हो रहे थे, इस दौर में सौ से ऊपर छोटे-छोटे कविता आंदोलन उभरकर सामने आ रहे थे, जिसमें अकविता, विद्रोही कविता, सनातनी कविता, अभिनव कविता, एब्सर्ड कविता, पोस्टर कविता, ताजी कविता जैसे अनेक आंदोलन कुकुरमुत्ते की तरह सामने आते हैं। जगदीश गुप्त ने नई कविता के आठवें अंक में समकालीन कविता पर विचार करते हुए तकरीबन 45 ऐसे आंदोलन का उल्लेख किसिम किसिम कविता के नाम से करते हैं। इन परिस्थितियों को देखते हुए डॉ विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने ठीक ही कहा था कि "यह बड़ी विचित्र बात है कि विविध नामों से जो काव्यान्दोलन युवा कवियों द्वारा खड़े किये गए हैं उन्हें बहुत प्रयत्न के बाद भी अलग-अलग परिभाषित कर पाना संभव नहीं है। लगभग इन सभी काव्यान्दोलनों की दृष्टि और लक्ष्य समान हैं और कहा जा सकता है कि ये सभी काव्यान्दोलन एक दशक की मानसिक स्थिति को रूपायित करते हैं तथा एक दशक का जीवन जिस आंतरिक और बाह्य दबाव को महसूस कर रहा है, उसे व्यक्त करते हैं। एक ही स्तर का असन्तोष, क्षोभ उत्तेजना और विद्रोह इन तमाम कवियों में व्यक्त हुआ है।"[3] आजादी के बाद के कवियों ने समाज का विघटन देखा था। यह दौर समकालीन कविता के लिए एक विक्षोभ से भरा हुआ था। समकालीन कविता में एकसाथ कई पीढ़ियों के कवि सक्रिय दिखाई पड़ते हैं। जिन्होंने अपने काव्य में समाज में मौजूद सत्ता का अहंकार, समाज मे व्याप्त मूल्यविहीनता और अवसाद को दर्ज करते हैं। ये सारे कवि संघर्ष के कवि थे जो

अपनी सृजन की जीवटता से समाज में नए रंग भरने का प्रयास कर रहे थे। वही अस्सी के बाद की भारतीय परिस्थिति को देखें तब भूमंडलीकरण ने भारतीय समाज को पूंजीवादी तंत्र ने जकड़ रखा था। बाजार ने भारतीय सामाज को एक कमोडिटी में तब्दील कर दिया था। जहां सबकुछ खरीदा और बेचा जा रहा था। उदारीकरण और निजीकरण के इस भयानक दौर में विमर्श की कविताएं उभर कर हमारे सामने आती है, जो उम्मीद जगाती हैं। यह वह कविता थी जिसे इतिहास में वह जगह नहीं दी गई जो इसे चाहिए थी। इन तमाम द्वंद्वों के बीच समकालीन कविता विकसित होती है। समकालीन कविता के स्वरूप पर गौर करें तो यह विद्रोही मनःस्थितियों से निर्मित हुई थी, जिसने मध्ययुगीन दृष्टि, कोरी भावुकता, सहानुभूति और मानववाद से ऊपर उठकर मनुष्य और उसके संघर्ष और विद्रोह की कविता दर्ज की है, जहां सत्ता संघर्ष की कविता से लेकर फूल तक पर कविता लिखी जाती है, हालांकि इसकी प्रकृति, सैद्धांतिक आमूलचूल बदलाव की थी जो मनुष्य को संघर्ष की ओर प्रेरित करती थी। समकालीन कविता की इस पूरी दिशा-दशा की पहचान करनी हो तो तीन कवियों की कविताओं को देखा जा सकता है। जिससे समकालीन कविता के जो मुख्य सवाल थे उससे हम रु-ब-रु हो सकते हैं। समकालीन कविता में रघुबीर सहाय, लीलाधर मंडलोई, अशोक वाजपेयी, कुमार अंबुज,राजेश जोशी तमाम ऐसे बड़े और महत्वपूर्ण प्रसिद्ध कवि रहे हैं जो अपने समय के सरोकारों को अपने काव्य सृजन में दर्ज करते हैं लेकिन हम यहाँ मुख्यतः तीन कवियों की कविताओं को देखेंगे जो समकालीन कविता के तमाम सवालों को अपने काव्य सृजन में दर्ज करते हैं। यहां हमलोग सुदामा पाण्डेय 'धूमिल, 'आलोकधन्वा' और 'भगवत रावत' की कविताओं को देखेंगे कि किस जीवटता के साथ समाज से अपने काव्यों के माध्यम से ये कवि संघर्ष करते हैं। इन तीनों कवियों की कविताओं में भारत की जो छवि है दरअसल वही छवि समकालीन कविता की है। इस दौर में धूमिल एक ऐसे कवि थे जहां वह अपनी कविताओं में दूसरे प्रजातंत्र की तलाश कर रहे थे , तो आलोकधन्वा अपनी कविता के बारे में कहते हैं कि मेरी कविता "जलते हुए गांवों के बीच से गुजरती है/मेरी कविता/तेज आग और नुकीली चीखों के साथ/जली हुई औरत के पास/सबसे पहले पहुंचती है।"[4] आलोकधन्वा की कविता ऐसी है कि जहां कोई नहीं पहुंचना चाहता है तो वहां आलोकधन्वा की कविता सबसे पहले पहुंचती है। भगवत रावत की कविता अंधाधुंध विकास के पूंजीवादी गठजोड़ की कलई खोलती है। भगवत रावत अपनी कविता में कहते हैं कि आने वाली दुनिया में हवा और पानी कैसे होगा यह तो कोई नहीं जानता लेकिन यह तय है कि 'दुनिया को ढेर सारी करुणा चाहिए' दुनिया को करुणा की आवश्यकता है। इन तीनों कवियों की विशेषता यह है कि ये अपनी कविताओं में दमित और 'भूखे-दुखे' की आवाज बनते हैं। इन कवियों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि यह उस परंपरा से विकसित हैं या इस परंपरा से यह आधार ग्रहण करते हैं। इनकी अपनी शैली है, सृजन के अपने पैमाने हैं। इनके काव्य सृजन का खुद का अपना वैशिष्ट्य है। सुदामा पाण्डेय धूमिल एक काव्य सर्जक के रूप में अपने पहले कविता संग्रह 'संसद से सड़क तक' जो

1972 ई. में प्रकाशित होती है उससे ही बन जाती है। जीवित रहते हुए यह पहली पुस्तक है जो प्रकाशित हुई थी। मृत्यु के बाद दो और काव्य 'कल सुनना मुझे' सन् 1977 ई. और 'सुदामा पाँडे का प्रजातंत्र' सन् 1984 ई. में सामने आता है। बच्चन सिंह धूमिल के उदय को हिंदी कविता में एक 'धूमकेतु' की तरह रेखांकित करते हैं। धूमिल जब कविता रच रहे थे तो उस दौर में कहानियों का बोलबाला था। धूमिल के उदय के साथ कविता की भी उदय देखने को मिलती है। डॉ. बच्चन सिंह धूमिल पर लिखते हैं "धूमिल का उदय धूमकेतु की तरह होता है जिसमें अग्नि भी है, धुआँ भी। धुआँ आधुनिकता है और अग्नि प्रगतिशील चेतना। धूमिल की ऊर्जा, विक्षोभ, आक्रामकता, भाषिक नवोन्मेष देखकर थोड़ी देर के लिए निराला की याद आ जाती है पर धूमिल का एक छोर आधुनिकता से बँधा था तो दूसरा छोर अराजकता से ये दानों प्रवृत्तियाँ शुरू से ही दिखाई पड़ती हैं और अंत तक इन दोनों ने अपना संग-साथ निभाया। सन् 1967 में ही वह एक ओर आधुनिकतावादी 'कविता' लिख रहे थे तो दूसरी ओर मोचीराम'।"[5] सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' की कविताओं को देखें तब यह आज़ादी के बाद उन प्रमाणिक कवियों में से एक हैं जिन्होंने आज़ादी के बाद धूमिल हुई आकांक्षाओं और इच्छाओं को जिन्होंने अभिव्यक्त किया है। इनकी लंबी कविता 'पटकथा' तो लोकतंत्र की कथा कहती है, ऐसी कथा जो लोकतंत्र का मूल्यांकन करती है। इनकी बहुतेरी ऐसी कविताएँ रही हैं जो सत्ता और मनुष्यता के बीच मनुष्यता का पक्ष लेती हैं। इनकी बहुप्रसिद्ध कविताओं में से एक है, बीस साल बाद, अकाल-दर्शन, मोचीराम, नक्सलबाड़ी, भाषा की रात और पटकथा जैसी तमाम अनेक महत्वपूर्ण कविताएँ जो लोकतंत्र का शिनाख़्त करती हैं। धूमिल इस बात के लिए चिंतित होते थे कि कभी ऐसा भी था कि "जब कहीं, किसी निर्जन में/आदिम पशुता चीखती थी और/सारा नगर चौंक पड़ता था।"[6] लेकिन ऐसा अब नहीं होता है। रघुवीर सहाय की कविता रामदास की तरह चौराहे पर मारी जा रही है और कोई मुट्ठी तक नहीं भींचता है। धूमिल इसलिए चिंतित होते हैं। धूमिल की कविता किसी बौखलाए हुए आदमी का संक्षिप्त एकालाप है। धूमिल की कविता बौखलाए हुए उनलोगों के साथ है, जिनके साथ कोई नहीं है। जब कोई चीखता है तो धूमिल की कविता साथ देती है। धूमिल की और कविता 'बीस साल बाद' ऐसी कविता है जो आज़ादी के मूल्यों की समीक्षा करती है। देश के निवासियों को लगता था कि आज़ादी के साथ चारों ओर शांति होगी लेकिन ऐसा नहीं हुआ,चारो ओर अशांति थी। धूमिल की भाषा में कहें तो 'हवा में फड़फड़ाते हुए हिंदुस्तान के नक्शे पर गाय ने गोबर कर दिया है।' धूमिल की कविता उदास भारत से जवाब माँगती है। धूमिल उससे चिढ़ते थे जो हाथ छुड़ाकर 'जनता के हित मे' स्थानांतरित हो जाते हैं। धूमिल की कविता उदासी का गीत गाती है। जिस जनता ने खुशफहम इरादों से सपने देखें थे वह सब एकदिन भ्रम दिखाई देने लगता है। धूमिल कहते हैं-"जनतन्त्र, त्याग, स्वतन्त्रता/संस्कृति, शान्ति, मनुष्यता/ ये सारे शब्द थे/ सुनहरे वादे थे/ खुशफहम इरादे थे।"b देश की जनता जिसने यह सपना देखा था कि अब सबकुछ अच्छा होगा लेकिन सभी को उदासी मिली। नागर्जुन की एक कविता याद आती है जिसमें मास्टर के जिक्र के

साथ स्कूलों की स्थिति पर वह टिप्पणी करते हैं। जहां छत चू रहा था और मास्टर भविष्य के साँचे बुन रहे थे। कुछ ऐसे ही ज़िक्र धूमिल भी करते हैं, जहां इंतज़ार और भूख के समाजशास्त्र के बीच आज भी नंगा चेहरा,और उदासी भरे बच्चें,और स्कूलों की स्थिति चिंताज़नक है। धूमिल कहते हैं "मैंने इंतजार किया/ अब कोई बच्चा/भूखा रहकर स्कूल नहीं जायेगा/अब कोई छत बारिश में नहीं टपकेगी। अब कोई आदमी कपड़ों की लाचारी में /अपना नंगा चेहरा नहीं पहनेगा/ अब कोई दवा के अभाव में/घुट-घुटकर नहीं मरेगा/अब कोई किसी की रोटी नही छीनेगा /कोई किसी को नंगा नहीं करेगा/अब यह जमीन अपनी है/आसमान अपना है।"[8] देश में जो सामाजिक आर्थिक असमानता है उससे भी धूमिल क्षुब्ध थे। आज के परिदृश्य में तो वैश्वीकरण ने इसे और गहरा किया है। बाजार ने अनेक तरह का प्रोडक्ट उन मनुष्यों के लिए उतारा है जो बहुत राजनीति नहीं जानते हैं। यहाँ जो नहीं खरीद पाता है, वह उदास होता है। इस प्रकार प्रजातान्त्रिक नुस्खे से दुःखी होता है कि यह सौंदर्य साधन किसी के लिए सहज ही उपलब्ध है तो किसी के लिए दूर की कौड़ी इस असमानता भरी सामाजिक खाई के लिए धूमिल कहते हैं, या यूँ कहूँ की पूछते हैं कि वह कौन-सा प्रजातान्त्रिक नुस्खा है/कि जिस उम्र में मेरी माँ का चेहरा झुर्रियों की झोली बन गया है/ उसी उम्र की मेरे पड़ोस की महिला के चेहरे पर मेरी प्रेमिका के चेहरे सा लोच है। धूमिल की कविताएं सवाल पूछती हैं। उन तमाम सामाजिक विद्रुपताओं से जो समाज में मनुष्यता पर प्रश्न खड़ा करती हैं। धूमिल सवाल पूछते हैं उनसे जो जनता के सवालों से बचकर कहीं और हस्तांतरित हो जाते हैं। धूमिल की कविता आम आदमी की कविता है जो रोजमर्रे की दिनचर्या से संवाद करती है और जवाब तलाशने का प्रयास करती है। धूमिल स्वतंत्र भारत के समालोचक कवि थे। वही इस दौर के एक और प्रमुख कवि आलोकधन्वा को देखें जो तमाम कविताओं के साथ सत्ता और जमींदार के गठजोड़ की कलई खोलते हैं। कवि आलोकधन्वा की पहली कविता जनता का आदमी 1972 में प्रकाशित हुई थी, इसी वर्ष एक और कविता 'गोली दागो पोस्टर' प्रकाशित हुआ था। इनकी पहली कविता यह बताती है कि वह किसका पक्ष लेती है। इसी कविता में वह बताते हैं कि कैसे एक ईमानदार व्यक्ति को पैदा होने से पहले ही गर्भ में गोली मार दी जाती है। यह रूपक बहुत कुछ कहता है। आज जिस दौर में हमलोग जी रहे हैं वहां ख़बर नहीं 'सनसनी'चलती है, इसी कविता में मीडिया को लेकर कवि आलोकधन्वा जिक्र करते हैं कि "वे लोग पेशेवर ख़ूनी हैं/जो नंगी ख़बरों का गला घोंट देते हैं/अख़बार की सनसनीख़ेज़ सुर्ख़ियों की आड़ में।"[9] आजकल खबरों के नाम पर सिर्फ 'सनसनी' दिखाई और सुनाई जाती है। आजकल ईमानदार भरी खबरें कहीं नहीं आती हैं। मीडिया ने सत्ता और पूंजी के साथ गठजोड़ कर लिया है। आलोकधन्वा की कविता सत्ता से सवाल पूछती है। जमींदार और सरकार की गठजोड़ ने आखिर आमजन को इतना मजबूर क्यों बना दिया है, जनता जो दिन रात काम करती है, जमीन को जोतने से लेकर ढोने तक का सारा काम वह खुद करती है लेकिन न जाने यह जमींदारों का 'रक्तपायी वर्ग' कहाँ

से आ जाता है जो मजदूरों का खून चूसता है, जिसपर आलोकधन्वा लिखते हैं "उस ज़मीन के लिए गोली दागने का अधिकार/ मुझे है या उन दोग़ले ज़मींदारों को जो पूरे देश को/ सूदख़ोर का कुत्ता बना देना चाहते हैं।"[11]

यहाँ कवि सिर्फ कविता नहीं कर रहा है बल्कि अपने दायित्व को भी निभाना चाहता है जो उसे तमाम हल चलनेवाले लोगों से मिला है। जिसपर वह खुद कहते हैं कि यह गोली दागने की समझ है/जो तमाम क़लम चलानेवालों को/तमाम हल चलानेवालों से मिल रही है। आलोकधन्वा की अनेक महत्वपूर्ण कविताएँ सामने आती हैं जो इन्हें समकालीन कविता में महत्वपूर्ण बनाती हैं। आलोकधन्वा की कविता जनता का आदमी से लेकर गोली दागो पोस्टर ,भागी हुई लड़कियां, पतंग, बारिश, और ब्रूनों की बेटियां जैसी तमाम महत्वपूर्ण कविताएं हैं जो आलोकधन्वा को एक महत्वपूर्ण कवि बनाती हैं। लड़कियों और स्त्रियों को आधार बनाकर आलोकधन्वा ने कई महत्वपूर्ण कविताएं लिखी हैं। मनुष्य द्वारा निर्मित मानचित्र के आधे हिस्से से स्त्रियां अभी भी गायब है। जिसे आलोकधन्वा ने कविताओं में बख़ूबी दर्ज किया है। चाहे वह 'छतों पर लड़कियां' हो या 'भागी हुई लड़कियां' या चौक और पगडंडियों पर चलने वाली औरते हों। आलोकधन्वा अपनी कविता में जिक्र करते हैं कि घर की जंजीरें/कितना ज्यादा दिखाई पड़ती है/जब घर से कोई लड़की भागती है। कहते हैं जब लड़की भागती है तभी मालूम चलता है घर की जंजीरें, जंजीरों को तोड़ना, किसी लड़की का घर छोड़ना बहुत ही दुःख और विपत्ति में ये फैसला लिया गया होगा, घर छोड़कर भागने का फैसला आसान नहीं रहा होगा। आलोकधन्वा की यह पंक्ति समाज की कलई भी खोलती है "अगर एक लड़की भागती है/तो यह हमेशा जरूरी नहीं है/कि कोई लड़का भी भागा होगा। कलई लड़की इसलिए सिर्फ लड़के के लिए नहीं भागती है बल्कि उसका अपना अस्तित्व है, उसकी अपनी संभावनाएं हैं जिसकी वह खुद खोज करना चाहती है। आलोकधन्वा कहते हैं "कई दूसरे जीवन प्रसंग हैं/जिनके साथ वह जा सकती है/कुछ भी कर सकती है/महज जन्म देना ही स्त्री होना नहीं है।"[11]

स्त्रियों का सिर्फ यह कर्तव्य बिल्कुल नहीं है कि वह स्त्री है। आलोकधन्वा की कई ऐसी कविताएँ हैं जो मनुष्य की आंतरिक आकांक्षाओं और इच्छाओं से जुड़ती हैं, चाहे मिलने की इच्छा का भाव हो या 'शरद की रातों को याद करना हो। आलोकधन्वा की कविता में चांद के उजाले में एक असहायता और कुचलती हुई उम्मीद का अक़्स दिखाई देता है। जो मनुष्य की उम्मीदों को जगह देता है। समकालीन कविता का एक प्रमुख विषय 'भूमंडलीकरण' हमेशा से रहा है। वर्तमान की बहुत सारी समस्याएं भूमंडलीकरण से जुड़ती हैं। भूमंडलीकरण ने देश को ग्लोबल तक ले जाने के बजाय बाजार का कमोडिटी बनाकर छोड़ दिया है। समकालीन कवियों में भगवत रावत एक ऐसे प्रमुख कवि हैं जो सत्तर के दशक से लिखना आरंभ कर चुके थे, जिन्होंने भूमंडलीकरण पर अपनी कलम सबसे ज्यादा चलाई है, मुझे लगता है भगवत रावत की वो तमाम कविताएं सबसे महत्वपूर्ण हैं जो भूमंडलीकरण और बाजार के ख़िलाफ़ लिखी गई हैं। कवि भगवत रावत बाजार

की आलोचना बहुतायत में करते हैं, आज बाजार हमारे जीवन का एक प्रमुख हिस्सा बन चुका है जहां सजग रहने की जरूरत है। भगवत रावत के कुल बारह कविता संग्रह हैं, जिनमें तमाम बिंदुओं पर सहज और सरल भाषा में अनेक महत्वपूर्ण कविताएँ हैं। इनके कविता संग्रह में समुद्र के बारे में (1977), दी हुई दुनिया(1981), हुआ कुछ इस तरह (1988), सुनो हिरामन (1992), सच पूछो तो(1996), हमने उनके घर देखे (2001), ऐसी कैसी नींद (2004) कविता संग्रह हैं तो नब्बे के दशक में एक आलोचना की पुस्तक भी प्रकाशित हुई थी, जिसका नाम है 'कविता का दूसरा पाठ' अपनी कविताओं में भगवत रावत कहते हैं कि "आने वाले लोगों /को दुनिया कैसी चाहिए/कैसी हवा कैसा पानी चाहिए/पर इतना तो तय है/कि इस समय दुनिया को/ढेर सारी करुणा चाहिए"a भगवत रावत विश्व के लिए करुणा पर जोर देते हैं जिस तरह दुनिया विकास की अंधाधुंध में भागदौड़ कर रही है वहां हवा, पानी, स्वच्छ भोजन तो बहुत मुश्किल है। भगवत रावत की कविता दुनिया को बचा लेने का उपक्रम है। भगवत रावत की उम्मीद के लिए एक व्यक्ति भी महत्वपूर्ण है जिसने कच्छपों की तरह पृथ्वी को उठा रखा है,एक ईमानदार व्यक्ति भगवत रावत की कविता और संसार के लिए महत्वपूर्ण है। भगवत रावत की कविताएं बहुत ही सरल और सहज बिंबों के साथ महत्वपूर्ण बातें कहती हैं, वे अपनी कविता में जो बिंब प्रयोग करते हैं वह भी बहुत कुछ कहती हैं। भगवत रावत कहते हैं कि 'घोंसलों में लौटती चिड़िया सुहानी लगती है' चिड़िया,पृथ्वी,समुद्र,दो बैल जैसे अनेक बिंब भगवत रावत की कविताओं में दिखाई देता है। भगवत रावत की एक कविता है कि "जब से भूमंडल नहीं रहा भौगोलिक चढ़ गया है/भूमंडलीकरण का बुखार जब से गायब होना शुरू हुई उदारता फैला प्लेग की तरह/उदारतावाद/जब से उजड़ गए गाँवों, कस्बों और शहरों के खुले मैदानों के बाजार घर-घर में घुस गया नकाबपोश/बाजारवाद/ यह अकारण नहीं कि तभी से प्रकृति ने भी ताक पर रख कर अपने नियम-धरम बदल दिए हैं"[13] भगवत रावत चिंतित हैं कि बाजार ने समाज के रंग-ढंग को बदल दिया है, चिड़ियों के कलरव,गांव-कस्बों पर बाजार ने कब्जा कर लिया है। भूमंडलीकरण ऐसा फैला है जैसे कोई प्लेग, उन्नसवीं शताब्दी में भारत के ऐसे कई गांव थे जब प्लेग के कारण समूचा गांव खत्म हो गया था। भगवत रावत इस बात से चिंतित हैं कि कहीं इसबार भूमंडलीकरण से फिर से गांव खत्म न हो जाएं, भूमंडलीकरण से भगवत रावत की कविता गांव और कस्बों को बचा लेना चाहती है। भगवत रावत की कविता कचरे बीनने वाली लड़कियों के लिए एक समाजशास्त्र की माँग करती है। यह उन लड़कियों के लिए जगह माँगते हैं जो घूमते सुअरों के बीच घूमती है,जिसके चेहरे काले पड़ गए हैं। भगवत रावत ने अपनी कविता में मज़लूमों से आवाज मिलायी है, जहां किसी की नज़र नहीं जाती वहां भगवत रावत की कविता जाती है। भगवत रावत की इच्छा-आकांक्षा बस इतनी-सी है कि किसी तरह दिखता रहे थोड़ा सा आसमान और मनुष्य की जीवटता बची रहे।

निष्कर्ष : समकालीन कविता उन तमाम प्रश्नों को उठाती है जो मनुष्यता से सरोकार रखते हैं, मनुष्यता की आशाओं और इच्छाओं को जगह देते हैं। समकालीन कविता सत्ता और मनुष्यता के बीच मनुष्यता का पक्ष लेती है, तमाम संघर्षों को आवाज देती है। समकालीन कविता में अनेक बड़े नाम हैं, जिन्हें देखना और समझना जरूरी है। सभी का स्वतंत्र अस्तित्व और महत्व है। समकालीन कविता का वह अध्ययन सबसे दोयम दर्जे का है जो एक कवि को दूसरे कवि से बड़ा साबित करने में लड़ता है। सभी कवियों का स्वतंत्र अस्तित्व और अलग प्रकृति होती है। समकालीन कविता में बहुत सारे नाम हैं जिनपर बातें हो सकती हैं, रघुवीर सहाय से लेकर राजेश जोशी तक लेकिन समकालीन कविता के तमाम प्रश्नों को देखें तो ये तीन कवि धूमिल, आलोकधन्वा, भगवत रावत प्रमुखता से उठते दिखाई पड़ते हैं। भगवत रावत की कविता भूमंडलीकरण से संघर्ष करती है तो धूमिल और आलोकधन्वा की कविता सत्ता से लोहा लेती है।समकालीन कविता खोखले मापदंडों, अहम,दर्प,रक्तपायी वर्ग, भय, प्रतिरोध,सत्ता तमाम प्रश्नों से टकराती है और मनुष्यता की राहें खोलती है।

संदर्भ सूची :-

1- मैनेजर पाण्डेय, अनभै साँचा ,वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, 2012 , पृष्ठ संख्या - 2

2- अशोक बाजपेयी, कवि कह गया है, भारतीय ज्ञानपीठ,2006

3- विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, समकालीन हिंदी कविता , लोकभारती प्रकाशन,नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ संख्या-178

4- आलोकधन्वा, दुनिया रोज बनती है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली , तृतीय संस्करण - 2009 , पृष्ठ संख्या - 33

5- डॉ. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, छठा संस्करण -2013 ,पृष्ठ संख्या- 451

6- सुदामा पाण्डेय धूमिल ,संसद से सड़क तक , प्रकाशन - राजकमल प्रकाशन- 2013 ,पृष्ठ संख्या - 9

7- धूमिल ,संसद से सड़क तक , राजकमल प्रकाशन- 2013 ,पृष्ठ संख्या - 101

8- वही, पृष्ठ संख्या - 46-47

9- आलोकधन्वा, दुनिया रोज बनती है, प्रकाशक- राजकमल प्रकाशन 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली-110002, तृतीय संस्करण- 2009, पृष्ठ संख्या -30

10- वही, पृष्ठ संख्या - 27

11- वही, पृष्ठ संख्या - 41

12- https://indiagroundreport.com/it-is-certain-that-the-world-needs-a-lot-of-compassion-at-this-time-bhagwat-rawat/ , 22/12/2023 , 03:30 PM

13- http://kavitakosh.org/, 22/12/2023, 03:30 PM

विक्रम कुमार

शोधार्थी, हिंदी विभाग,

राजीव गांधी विश्वविद्यालय,

रोनो हिल्स, दोईमुख, अरुणाचल प्रदेश- 791112

मोबाईल नं.- 9532733401